

उपनिषद् दर्शन : एक चिन्तन

भावना शुक्ला*

वेद विश्ववाङ्मय के सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। यह ज्ञान का अक्षय कोष है, जो नित्य तथा अपौरुषेय है। वेदों के अन्तिम भाग को उपनिषद् (वेदान्त) की सञ्ज्ञा दी जाती है। भारतीय दर्शन की विचार सरणि में वेदान्त दर्शन की प्रतिष्ठा चूडान्त सिद्धान्त के रूप में रही है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा गीता को दर्शन परम्परा में प्रस्थानत्रयी की सञ्ज्ञा दी जाती है। तथा इसी प्रस्थानत्रयी के आधारारम्भ पर बनने वाले चिन्तन प्रासाद का नाम ही वेदान्त है।¹ उपनिषद् की गणना भी प्रस्थानत्रयी की 'श्रुति प्रस्थान' में की जाती है।² भारतीय दर्शन की ऐसी कोई विचारधारा नहीं है, जिसका उद्गम उपनिषद् में न हो। उपनिषद् शब्द 'उप' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक षदलु धातु से कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है। षदल धातु के तीन अर्थ प्रतिपादित हैं— (1) विशरण (2) गति तथा (3) अवसादन। अर्थात् वैराग्यादि सम्पन्न मुमुक्षु जब तत्त्वज्ञ गुरु के समीप बैठकर उस ज्ञान का अनुशीलन करता है, जो सर्वप्रथम सांसारिक बुद्धि को क्षीण करती है, तदनन्तर उसके जन्म-मरणरूप संसार चक्र तथा उसके कारणभूत अज्ञान का नाश कर उसे वास्तविक स्वरूप अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है।³

इसे ही ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। चूँकि यह विद्या गुरु शिष्य को एकान्त में प्रदान करता है अतः इसे 'रहस्य-विद्या' भी कहते हैं।⁴ वस्तुतः उपनिषद् पद का प्रयोग रहस्यपूर्ण सिद्धान्तों के अर्थ में किया जाता था अतः इनका अनुशीलन मोक्षाकांक्षी, संयमित एवं नियमों का अनुपालन करने वाले जिज्ञासुओं द्वारा किया जाता था।

सृष्टि विचार— उपनिषद् दर्शन सृष्टि को सत्य स्वीकार करता है, क्योंकि ब्रह्म ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं विलय का कारण है। देश, काल, प्रकृति आदि ब्रह्म का आवरण है, क्योंकि सभी में ब्रह्म व्याप्त है। मुण्डकोपनिषद् में भी सृष्टि की उत्पत्ति में ब्रह्म ही उपादान एवं निमित्त कारण है। जिस प्रकार मकड़ा अपने अन्तःस्थ उपकरणों से जाला बुनता है तथा फिर स्वेच्छा से अपने अन्दर समेट लेता है, जिस प्रकार पृथ्वी औषधियाँ उत्पन्न करती है, जिस प्रकार पुरुष के सिर से रोये उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार यह ब्रह्म माया के सहयोग से सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहनन करता है।⁵

*शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

बृहदारण्यकोपनिषद् में सृष्टि का मूल तत्त्व जल को स्वीकार किया गया है। जल से सत्य, सत्य से ब्रह्म, ब्रह्म से प्रजापति, प्रजापति से देवता तथा तदनन्तर समस्त सृष्टि प्रादुर्भूत हुई है।⁶

छान्दोग्योपनिषद् में समस्त सृष्टि का मूल स्रोत सत् माना गया है। सत् से तेज, तेज से जल, जल से अन्न, अन्न से अण्डज, जीवज एवं उद्भिज उत्पन्न हुए हैं।⁷ यहाँ तेजस्, अन्न एवं जल त्रिवृत्त होकर समस्त वस्तुओं का कारण बनें। तथा यही त्रिवृत्तिकरण का सिद्धान्त आगे चलकर वेदान्त का पञ्चीकरण बना। श्वेताश्वतरोपनिषद् (1.2) में परमात्मा से सृष्टि की उत्पत्ति मानी गयी है।⁸ नारायणोपनिषद् के अनुसार श्रीनारायण ने अपनी संकल्प शक्ति से सृष्टि का उपादान किया है।⁹ प्रश्नोपनिषद् में प्रजापति को स्रष्टा कहा गया है। ऐतरेयोपनिषद् में सम्पूर्ण सृष्टि को निर्गुण ब्रह्म से उत्पन्न माना गया है। मुण्डकोपनिषद् में निर्गुण एवं सगुण दोनों को ही सृष्टि का मूल कारण माना गया है, जबकि श्वेताश्वतरोपनिषद् सगुण ब्रह्म को सृष्टि का मूल कारण मानती है। इसमें सृष्टि संकाय के छः मत स्वीकार किए गए हैं— (1) काल, (2) स्वभाव, (3) नियति, (4) यदृच्छा (5) पञ्चमहाभूत अथवा (6) पुरुष को लोग समस्त भूतों की योनि मानते हैं।¹⁰ उपनिषदों में अनेकशः जगत् को ब्रह्म का विकास माना गया है। उनके अनुसार सर्वप्रथम ब्रह्म से आकाश का, आकाश से वायु का, वायु से अग्नि का विकास होता है। इसके अतिरिक्त पञ्चकोष है, जिनमें से भौतिक पदार्थ को अन्नमय, पौधों को प्राणमय, पशु को मनोमय, मनुष्य को विज्ञानमय तथा विश्व के यथार्थस्वरूप को आनन्दमय कोष कहते हैं।

ब्रह्मविचार— अनादिकाल से ही दृश्यमान लौकिक प्रपञ्च को देखकर मनुष्य का मन इस सृष्टि के रहस्य को जानने के लिए व्यग्र होता है। उसे यह ज्ञात होता है कि इस सृष्टि की उत्पत्ति, सञ्चालन एवं संहनन के मूल में निश्चित रूप से कोई परोक्ष नियन्ता है। तथा उपनिषदों में भी उस शक्ति पर विशेष विचार किया गया है। उपनिषदों में प्रतिपादित है कि उस परमतत्त्व का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष तो सम्भव नहीं है तथापि उसका अस्तित्व सन्देहरहित है तथा उसकी अपरोक्षानुभूति विशुद्ध अन्तःकरण द्वारा ही सम्भव है।

उपनिषदों में ब्रह्म को ही परमतत्त्व माना जाता है। 'ब्रह्म' शब्द 'वृह' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है— 'बढ़ना'। ब्रह्म को ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कारण माना जाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में वरुण पुत्र भृगु ने जब ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा की तो वरुण ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि— 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्यभिसंविशन्ति, तद् ब्रह्मेति।'¹¹ अर्थात् जिसमें समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होने के पश्चात्

सब जीवन धारण करते हैं तथा अन्त में जिसमें सब विलीन हो जाते हैं, वही ब्रह्म है। केनोपनिषद् में प्रतिपादित है कि 'वहाँ न तो चक्षुरिन्द्रिय पहुँच सकती है, न वागेन्द्रिय और न ही मन, जिससे उस ब्रह्म को प्रतिपादित किया जाए कि वह ऐसा है। न तो हम उसे स्वयं बुद्धि से जानते हैं, न दूसरो से सुनकर ही जानते हैं, क्योंकि वह जाने हुए पदार्थ से भिन्न तथा उससे भी ऊपर है।'¹²

कठोपनिषद् में भी कहाँ गया है कि वह आत्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से, न बहुधा सुनने से ही प्राप्त होता है।¹³

मुण्डकोपनिषद् में प्रतिपादित है कि वह परमात्मा न चक्षु से, न वाणी से, और न अन्य इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य है तथा तप अथवा कर्मों से भी ग्रहण नहीं किया जा सकता, उस निष्फल को तो विशुद्ध अन्तःकरण से ध्यान करता हुआ ही ज्ञान की निर्मलता को देख पाता है।¹⁴ तैत्तिरीयोपनिषद् में भी कहा गया है कि जहाँ मनसहित वाणी आदि इन्द्रियाँ उसे न पाकर लौट आती हैं, उस ब्रह्मानन्द को जानने वाला पुरुष भयभीत नहीं होता।¹⁵ इस प्रकार ब्रह्म इन्द्रियगोचर नहीं है।

उपनिषदों में परब्रह्म तथा अपरब्रह्म के भेद से ब्रह्म के दो भेद प्रतिपादित हैं। परब्रह्म असीम, निर्गुण, निर्विशेष, निष्प्रपञ्च तथा अपर ब्रह्म इसके बिल्कुल विपरीत ससीम, सगुण, सविशेष एवं सप्रपञ्च है। परब्रह्म अमूर्त तथा स्थिर है जबकि अपर ब्रह्म मूर्त तथा अस्थिर है। निर्गुण होने से परब्रह्म उपासना का विषय नहीं है, जबकि सगुण होने से अपर ब्रह्म उपासना का विषय है। 'नेति नेति'¹⁶ कहकर परब्रह्म तथा 'इति इति' कहकर अपर ब्रह्म को व्याख्यायित किया गया है। परब्रह्म को ब्रह्म तथा अपरब्रह्म को ईश्वर कहा गया है।

वस्तुतः सगुण एवं निर्गुण इन दोनों ही ब्रह्म में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही ब्रह्म के दो दृष्टिकोण हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् में ब्रह्म को सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, कर्माध्यक्ष तथा साक्षी कहा गया है तथा अन्यत्र उन्हें निर्गुण भी कहा जाता है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेताकेवलो निर्गुणस्य।।¹⁷

'एकमेवद्वितीयम्'¹⁸ कहकर उपनिषदों में ब्रह्म का एक और अद्वितीय माना गया है। वह द्वैतरहित है तथा उसमें ज्ञाता एवं ज्ञेय का भेद भी नहीं है। वह एकमात्र सत्य है। अविद्या के कारण ही हमें उसमें नानात्व का दर्शन होता है। ब्रह्म कालातीत, नित्य तथा शाश्वत है। वह भूत एवं भविष्यत् का स्वामी है तथापि त्रिकाल से परे है। ब्रह्म अणु से भी अणु तथा महत् से भी महत् है।¹⁹ वह विश्वव्यापी एवं विश्व से परे भी है। किसी भी दिशा में सीमित न होने से वह दिशाओं से भी परे तथा उसका आधार है। ब्रह्म को ज्ञानस्वरूप माना जाता है— 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'²⁰

तैत्तिरीयोपनिषद् में ब्रह्म का 'सत्यं ज्ञानमनन्तं'²¹ कहा गया है। यहाँ 'सत्य' कहने का अभिप्राय ब्रह्म की अपरोक्ष निश्चयात्मकता से है तथा ज्ञान से अभिप्राय उसके चेतनात्मक स्वरूप से है। वह ब्रह्म व्यापक होने से देशगत परिच्छेद नहीं है, नित्य होने से कालगत परिच्छेद नहीं है और सबका आत्मा होने से वस्तुगत परिच्छेद भी नहीं है।²² इस प्रकार ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है।

किसी भी वस्तु का वर्णन करने हेतु उसके असाधारण धर्म का प्रतिपादन करना होता है। तथा असाधारण धर्म को बताना ही उस वस्तु का लक्षण है। यह लक्षण भी दो प्रकार का होता है— (1) स्वरूप लक्षण²³ (2) तटस्थ लक्षण।²⁴ ब्रह्म इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं विलय का निमित्त एवं उपादान कारण है।²⁵ स्वरूप लक्षण वस्तु के तात्त्विक स्वरूप का प्रतिपादन करता है, जबकि तटस्थ लक्षण वस्तु के आगन्तुक एवं परिवर्तनशील गुणों का वर्णन करता है। यह वह धर्म है, जो धर्मों के साथ कभी सम्बद्ध होता है तो कभी नहीं होता है। उपनिषदों में सगुण ब्रह्म के स्वरूप एवं तटस्थ दोनों लक्षण प्रतिपादित हैं। सगुण ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है— 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'²⁶ तथा 'सच्चिदानन्दं ब्रह्म' आदि। इस प्रकार ब्रह्म सत्य, ज्ञानमय, अनन्त एवं अखण्डानन्द स्वरूप है। अतः ब्रह्म सच्चिदानन्द, शान्त एवं शिव है तथा जगत्कारणता, समस्तकल्याणगुणोपेत एवं विश्वव्यापकता तथा सम्प्रभुता ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। इस प्रकार 'जगज्जन्मादिकारणत्व' ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। ब्रह्मसूत्र में भी 'जन्माद्यस्य यतः'²⁷ कहकर ब्रह्म के तटस्थ लक्षण का प्रतिपादन किया गया है।

उपनिषदों में ब्रह्म की व्याख्या कहीं कहीं 'नेति नेति' पद्धति में, कहीं कहीं 'इति इति' पद्धति में तथा कहीं कहीं 'नेति इति' पद्धति में की जाती है। उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म का निर्वचन में की जाती है। उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म का निर्वचन में निषेधात्मक पदों का प्रयोग किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में 'नेति नेति' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'ब्रह्म न यह है, न वह है (नेति नेति) बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म को अस्थूल, अणु, ह्रस्व, अदीर्घ, अलोहित, अच्छाय, अतम, असप्र, अरस, अगन्ध, अचक्षुष्क, अश्रोत्र, अवाक्, अमन, अप्राण, अमुख, अनन्तर, अबाह्य, अयुक्त तथा अभोग्य प्रतिपादित किया गया है।²⁸ कठोपनिषद् में भी ब्रह्म की निषेधात्मकता को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि ब्रह्म अशब्द, अरूप, अस्पर्श, अरस, अगन्ध, अनादि और अनन्त है।²⁹ तैत्तिरीयोपनिषद् में 'यतो वाचो निर्वतन्ते अप्राप्य मनसा सह'³⁰ कहकर ब्रह्म को वाणी एवं मन दोनों के परे बताया गया है। इस प्रकार 'नेति नेति' सिद्धान्त के द्वारा ब्रह्म की अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः 'नेति नेति' का सिद्धान्त मात्र ब्रह्म के गुणों का निषेध करता है, ब्रह्म का नहीं।

जीवात्मा — उपनिषदों में आत्मा के स्वरूप का अनेकशः प्रतिपादन किया गया है। उपनिषदों में आत्मा एवं ब्रह्म को अभिन्न माना गया है। 'तत्त्वमसि',³¹ 'अयमात्मा ब्रह्म'³² 'अहं ब्रह्मास्मि'³³ आदि वाक्य आत्मा एवं ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करते हैं। शंकराचार्य आत्मा एवं ब्रह्म को एक मानते हैं। वस्तुतः मूल चैतन्य का आधार आत्मा ही है। वह ज्ञाता है, ज्ञेय नहीं। वह नित्य तथा सर्वव्यापी है। तथा यहीं कारण है कि आत्मतत्त्व का चिन्तन ही उपनिषदों का केन्द्र बिन्दु है। शंकराचार्य ने स्वयं कहा है कि 'आत्मा संसार के समस्त पदार्थों में व्याप्त रहता है, समस्त पदार्थों को स्वयं में ग्रहण करता है, तथा समस्त पदार्थों की अनुभूति करता है और उसकी सत्ता शाश्वत रहती है, वहीं आत्मन् है।'³⁴ आत्मा शब्द का प्रारम्भ में श्वास अर्थ में प्रयोग किया जाता था तथा कालान्तर में आत्मा शब्द का प्रयोग चैतन्य अर्थ में किया जाने लगा। कठोपनिषद् में नचिकेता को आत्मा के अस्तित्व के सन्दर्भ में जिज्ञासा होती है कि 'मृत्यु के पश्चात् यह आत्मा रहती है अथवा नहीं, इस सन्दर्भ में मेरा मार्गदर्शन करें।'³⁵ तो इस जिज्ञासा का शमन करते हुए यमराज कहते हैं कि 'आत्मा के विषय में तो देवताओं को भी सन्देह हुआ था, क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म विषय है तथा सरलता से बोधगम्य नहीं है।'³⁶ किन्तु नचिकेता आत्मतत्त्व के सन्दर्भ में जानने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था अतएव यमराज के द्वारा अनेक प्रकार के प्रलोभनों के दिए जाने पर भी उसने आत्मतत्त्व को जानने की इच्छा की। यमराज आत्म तत्त्व के विषय में स्वयं बताते हैं। कि 'नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है। यह न तो स्वयं किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुआ है और न ही कोई इससे उत्पन्न होता है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है अर्थात् क्षय एवं वृद्धि से रहित है, और शरीर के नष्ट हो जाने पर भी स्वयं नहीं मरता।'³⁷ इस प्रकार के गुण शरीर, इन्द्रिय तथा मन से भिन्न किसी अन्य तत्त्व के ही हो सकते हैं। क्योंकि मृत्योपरान्त तो शरीर, इन्द्रिय तथा मन आदि का भी विनाश हो जाता है। अतः आत्मा को इन सभी से भिन्न स्वीकार करते हुए कठोपनिषद् में कहा गया है कि 'इन्द्रियों की अपेक्षा उनके शब्दादि विषय श्रेष्ठ हैं, विषयों से मन उत्कृष्ट है, मन से भी बुद्धि श्रेष्ठ है तथा बुद्धि से भी आत्मा श्रेष्ठ है।'³⁸

कठोपनिषद् के अनुसार आत्मा, मन, बुद्धि, विषय, शरीर एवं इन्द्रियों का नियन्त्रक है। इस विषय में कठोपनिषद् रथरूपक के दृष्टान्त के माध्यम से आत्मा के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए बताया गया है कि— 'शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ अश्व हैं। विषय मार्ग है।, जीव भोक्ता है और आत्मा रथी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा विषय आदि सबका नियामक होते हुए भी आत्मा इन सबसे सर्वथा असम्पृक्त है। कठोपनिषद् में आत्मा

को अणु से भी अणुतर, महत् से भी महत्तर, शाश्वत, उत्पत्ति रहित एवं विनाशरहित बताया जाता है, जो इस देह के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है।'³⁹

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदें सृष्टि को सत्य स्वीकार करती हैं तथा आत्मतत्त्व का चिन्तन ही उपनिषदों के चिन्तन का केन्द्रबिन्दु है ब्रह्म ही सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति में उपादान और निमित्त कारण है वही इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय का कारण है। जिस प्रकार चक्र की अराएँ उसके केन्द्र में संग्रहित हैं। उसी प्रकार इस सम्पूर्ण सृष्टि का कण-कण एवं जीवात्माएं उस ब्रह्म में केन्द्रित रहते हैं

सन्दर्भ—सूची

1. चन्द्रधर शर्मा— भारतीय दर्शन
2. राममूर्ति पाठक— भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन
3. उपनिषादयति सर्वानर्थकरसंसारं विनाशयति, संसारकरणभूतामविद्याञ्च शिथिलयति, ब्रह्म च गमयति इति उपनिषद्।— (ईशावास्योपनिषद् की भूमिका)
4. भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, राममूर्ति पाठक, पृ0 28
5. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च यथापृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति। यथासतः पुरुषात् केशलोमानितथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।।—(मुण्डकोपनिषद्—1/1)
6. बृहदारण्यकोपनिषद् (5.1)
7. छन्दोग्योपनिषद् (6/6/2/3)
8. श्वेताश्वतरोपनिषद् (1.2)
9. नारायणोपनिषद्
10. श्वेताश्वरोपनिषद् (1.2)
11. तैत्तिरीयोपनिषद् (3/1)
12. न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो विद्मो न विजानीमोयथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्वयाचक्षिरे।। — (केनोपनिषद्—1/3)
13. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।।— कठोपनिषद् (1/2/23)

14. न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा, नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु त पश्यते निष्कलं ध्यायमानम्।।—
(मुण्डकोपनिषद्-3/1/8)
15. यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्राह्मणो विद्वान्। न
बिभेति कदाचनेति।।— (तैत्तिरीयोपनिषद्-2/4)
16. बृहदारण्यकोपनिषद् (2/3/6)
17. श्वेताश्वतरोपनिषद् (6.11)
18. छान्दोग्योपनिषद् (6/2/1)
19. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।।— कठोपनिषद्
(1/2/20)
20. बृहदारण्यकोपनिषद् (3/9/28)
21. तैत्तिरीयोपनिषद् (2/1/1)
22. न व्यापित्वाद् देशतोऽन्तो नित्यत्वान्नापि कालतः।
न वस्तुतोऽपि सार्वान्यादानन्त्यं ब्रह्मणि त्रिधा।।— पञ्चदशी— (3/35)
23. स्वरूपं सद् व्यावर्तकं।
24. तदभिन्नत्वेसति तद्बोधकं।
25. तैत्तिरीयोपनिषद् (3/1), छान्दोग्योपनिषद् (3/14/2)
26. बृहदारण्यकोपनिषद् (3/9/28)
27. ब्रह्मसूत्र (1/1/2)
28. अस्थूलमनण्वहस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसप्रम—
रसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न
तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन।।— बृहदारण्यकोपनिषद् (3/8/8)
29. अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्या तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।।— कठोपनिषद् (1/3/15)
30. तैत्तिरीयोपनिषद् (2/4)
31. छान्दोग्योपनिषद् (6/8/7)
32. माण्डूक्योपनिषद्-2

33. बृहदारण्यकोपनिषद् (1/4/10)
34. यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह। यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति
कीर्त्यते।।— शंकराचार्य, कठोपनिषद्भाष्य (2/1/1)
35. येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।।—कठोपनिषद्
(1/1/20)
36. देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः।।—
(कठोपनिषद्-1/1/21)
37. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।—(कठोपनिषद्
1/2/18)
38. इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनस्तु परा बुद्धिबुद्धेरात्मा महान् परः।।— (कठोपनिषद्- 1/3/10)
39. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः
प्रसग्रहमेव च। इन्द्रियाणि ह्यानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रियं मनोयुक्तं
भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।— (कठोपनिषद्-1/3/3-4)

